अँखियाँ सखि ! या रूप लुभानी ।
देखन चहत कमल-दल-लोचन, सुनन चहत मृदु बानी ।
हौं समुझावत हारि थकी पै, इनने एक न मानी ।
नहिं सूखत एकहुँ छिन कहँ सखि ! इन अँखियन को पानी ।
तजि दीनी तृन सम इन निगुरिन, लोक लाज कुल कानी ।
जो 'कृपालु' होनी थी हो गइ, अब का होनी जानी ॥

भावार्थ-

एक विरहिणी कहती है - अरी सखि ! मेरी आँखें श्यामसुन्दर के सुन्दर रूफ पर मोहित हो गयी हैं । अब तो सखि ! ये केवल श्यामसुन्दर को ही देखना चाहती हैं । इन्हीं की देखा-देखा कान भी एक मात्र श्यामसुन्दर की ही मधुर वाणी सुनना चाहते हैं । मैंने अनेक प्रकार से इन आँखों के आँसू एक क्षण के लिये भी नहीं बन्द होते । इन्होंने अनादिकालीन लोक एवं कुल की लज्जा को तृण के समान त्याग दिया । अब मैं क्या करूँ ? इतने में **'कृपालु'** ने कहा - अरी सखि ! जो होना था सो हो गया, अब कुछ नहीं हो सकता ।

© 2008 जगद्गुरु कृपालु परिषत्